विधि निर्माण के सुधार में न्यायपालिका की भूमिका

drishtiias.com/hindi/printpdf/role-of-judiciary-in-improving-lawmaking

यह एडिटोरियल दिनांक 06/09/2021 को 'द हिंदू' में प्रकाशित 'The judicial role in improving lawmaking' लेख पर आधारित है। इसमें विधि निर्माण की वर्तमान प्रक्रिया के समक्ष विद्यमान समस्याओं की चर्चा की गई है और विचार किया गया है कि इस विषय में न्यायिक हस्तक्षेप किस प्रकार भविष्य की राह प्रदान कर सकता है।

समय के साथ **संसद में होने वाली बहसों की गुणवत्ता में आई गिरावट** ने विभिन्न हितधारकों की ओर से सुधार की माँग को प्रेरित किया है। हाल ही में भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) ने भी इस समस्या पर प्रकाश डाला और माना कि सार्थक विचार-विमर्श के बिना पारित कानूनों में मौजूद अस्पष्टताएँ और अंतराल परिहार्य मुकदमेबाजी को अवसर देते हैं।

जबकि CJI ने यह सुझाव दिया कि विचार-विमर्श की गुणवत्ता में सुधार के लिये अधिवक्ताओं और बुद्धिजीवियों को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना चाहिये, स्वयं न्यायपालिका विधि निर्माण की प्रक्रिया में सुधार की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

विधायी प्रक्रिया के साथ संबद्ध समस्याएँ

- **दक्षता के मापन की समस्याएँ:** आम तौर पर संसद द्वारा एक सत्र में पारित विधेयकों की संख्या के आधार पर इसकी दक्षता का मापन किया जाता है। लेकिन मापन का यह दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है क्योंकि बिना पूर्व नोटिस और विचार-विमर्श के कानूनों को पारित करने में पाई गई दक्षता में जो चीज़ें छूट जाती हैं, उसका कोई आकलन नहीं किया जाता है।
    - इनमें से अधिकांश कानून व्यक्तियों पर बोझपूर्ण दायित्व लादते हैं और प्रायः उनके मौलिक अधिकारों को प्रभावित करते हैं।
- **मतदाताओं की तुलना में दलीय राजनीति को प्राथमिकता:** लोगों के प्रतिनिधि के रूप में विधि-निर्माताओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे किसी कानून के लिये अपना वोट डालने से पहले अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।
    - इन कर्त्तव्यों में कानून के निहितार्थों के संबंध में उचित विचार-विमर्श, संबंधित मंत्री के समक्ष संशोधन प्रस्तुत करना एवं उससे प्रश्न पूछना और स्थायी समितियों के माध्यम से विशेषज्ञ साक्ष्य प्राप्त करना शामिल हैं।
    - लेकिन ये प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों के बजाय अपने राजनीतिक दल को अधिक प्राथमिकता देते हैं।
- **प्रभावी भागीदारी का अभाव:** विविध हितधारक समूहों को विधायी अंग में ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। ऐसे मंच पर व्यापक विचार-विमर्श यह सुनिश्चित करता है कि कानून से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकने वाले व्यक्तियों के विचारों को सुना जाए और वे सक्रिय रूप से इसमें संलग्न हों।
- **प्रभावी कार्यकरण का अभाव:** विधि निर्माण की जल्दबाजी से संवैधानिक लोकतंत्र के दो मूल आदर्शों (एकसमान भागीदारी और मौलिक अधिकारों के सम्मान) की अवेहलना होती है तथा संसद को एक रबर स्टैंप भर में बदल दिया जाता है।

- **संवैधानिक प्रावधानों को महत्त्वहीन करना:** संविधान में संसद और राज्य विधान मंडलों द्वारा कानून पारित किये जाने के तरीके के संबंध में विस्तृत प्रावधान मौजूद हैं। दुर्भाग्य से प्रायः इन्हें महत्त्व नहीं दिया जाता है।
    - उदाहरण के लिये, ध्वनि मत के माध्यम से प्राप्त परिणाम की अस्पष्टता की स्थिति में भी सदैव "हां" और "न" की सही संख्या की गणना नहीं की जाती है, जिससे यह प्रकट होता है कि अनुच्छेद 100 के तहत बहुमत वोट हासिल करने की शर्त की पूर्ति के बिना भी विधेयक पारित किये जा सकते हैं।
    - अभी हाल में यह समस्या स्पष्ट रूप से नज़र आई जब राज्य सभा में विपक्ष के सदस्यों की आपत्तियों के बावजूद विवादास्पद कृषि कानूनों को आनन-फानन में ध्वनि मत द्वारा पारित करा लिया गया।
- **धन विधेयक के प्रावधान का दुरुपयोग:** कई विधेयकों को **धन विधेयकों** के रूप में पेश किया जाता है (भले ही वे अनुच्छेद 110 के तहत प्रदत्त धन विधेयकों के विशिष्ट विवरण की पूर्ति न करते हों) ताकि राज्य सभा के हस्तक्षेप से उन्हें मुक्त रखा जा सके।
    - **आधार मामले (Aadhaar case)** में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तरह के मामलों में प्रक्रियात्मक प्रावधानों का पालन किये जाने का परीक्षण कर सकने की अपनी शक्ति की पुष्टि की थी।
    - हालाँकि इन प्रावधानों को गंभीरता से तभी लिया जाएगा जब न्यायपालिका उनके उल्लंघनों को समयबद्ध रूप से संबोधित करे।
    - सरकार के ऐसे कानूनों को दी गई चुनौती न्यायालय में जितने अधिक अरसे तक लंबित बनी रहेगी, राज्य के पास यह तर्क देने का उतना ही अधिक अवसर बनता रहेगा कि कानून के अंतर्गत सृजित अधिकारों और दायित्वों को "मात्र" किसी प्रक्रियात्मक उल्लंघन के लिये भंग नहीं किया जाना चाहिये।

न्यायपालिका की भूमिका

- **संवैधानिकता की भावना को लागू करना:** न्यायपालिका विधि निर्माण की प्रक्रिया में सुधार लाने और लोकतांत्रिक आदर्शों को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।
    ऐसा करने का एक प्रत्यक्ष तरीका यह है कि विधायी प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने वाले संवैधानिक प्रावधानों के मूल पाठ और भावना को तत्परता से लागू किया जाए।
- **मूल्यांकन के तरीके को बदलना:** न्यायपालिका के लिये इसका एक प्रमुख तरीका यह होगा कि वह कानूनों की संवैधानिक वैधता के मूल्यांकन में 'विचार-विमर्श' या बहस (deliberation) को एक प्रमुख कारक के रूप में देखे।
- **न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग करना:** न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में न्यायालय की यह भूमिका होगी कि वह राज्य से किसी कानून की तार्किकता और इस प्रकार उसकी वैधता का औचित्य साबित करने की माँग करे।
    - ऐसा करते समय न्यायालय यह परीक्षण भी कर सकता है कि विधायिका ने ऐसे किसी कानून की तर्कसंगतता पर विचार-विमर्श किया है या नहीं।
    - विधायी परीक्षण में आम तौर पर कानून को सही ठहराने वाले तथ्यात्मक आधार का मूल्यांकन, घोषित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कानून की उपयुक्तता और मौलिक अधिकारों पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के सापेक्ष कानून की आवश्यकता एवं आनुपातिकता का मूल्यांकन करना शामिल होना चाहिये।
    - दरअसल, सर्वोच्च न्यायालय ने इंडियन होटल एंड रेस्टोरेंट्स एसोसिएशन केस (2013) में यही दृष्टिकोण अपनाया भी था।
        - न्यायालय ने केवल थ्री स्टार्स से कम स्तर के होटलों में डांस प्रदर्शन को प्रतिबंधित करने वाले कानून को इसमें निहित वर्ग पूर्वाग्रह—और इसलिये समानता का उल्लंघन करने के लिये अमान्य करार दिया था।
        - जबकि राज्य ने इस आधार पर वर्गीकरण को उचित ठहराया था कि केवल निम्न स्तर के ऐसे होटल ही 'ट्रैफिकिंग' के स्थल थे, न्यायालय ने विधि निर्माण की प्रक्रिया का परीक्षण कर इस दावे को खारिज कर दिया और पाया कि राज्य के पास इस दावे का समर्थन करने के लिये अनुभवजन्य आँकड़ा उपलब्ध नहीं था।

- **संवैधानिकता का अनुमान (Presumption of Constitutionality):** न्यायपालिका "संवैधानिकता के अनुमान" के सिद्धांत के प्रयोग के लिये भी विचार-विमर्श को एक कारक के रूप में चुन सकती है।
    - यह सिद्धांत कानून की तर्कसंगतता पर न्यायालय से संयम बरतने और विधायी निर्णयों को स्थगित रखने की अपेक्षा रखता है।
    - यह सिद्धांत इस कल्पना में निहित है कि विधायिका एक व्यापक रूप से प्रतिनिधिक और विचार-विमर्श करने वाला अंग है, और इस प्रकार "अपने लोगों की आवश्यकताओं को समझता है और उपयुक्त रूप से उनकी पूर्ति करता है।"
    - यदि न्यायपालिका सिद्धांत को केवल उन मामलों तक सीमित रखती है जहाँ राज्य यह दर्शाता है कि संसद में कानूनों और उनके परिणामों पर सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श किया गया है, तो न्यायपालिका विधायी निकायों को एक विचार-विमर्श संपन्न विधि निर्माण प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिये प्रोत्साहित कर सकती है।
- **विधायिका में स्वयं उसके अंदर से सुधार:** मुख्य न्यायाधीश का यह सुझाव कि विधायिका में स्वयं उसके अंदर से सुधार हो, निश्चय ही शक्तियों के पृथक्करण के संबंध में किसी चिंता को बढ़ावा दिये बिना विधायी समस्याओं को दूर करने का एक आदर्श समाधान हो सकता है।
    - हालाँकि, विधायी बहुमत के पास इस तरह के सुधार के लिये सहयोग करने हेतु बहुत कम प्रेरणा मौजूद है और इस रुख में बदलाव के लिये इस विषय पर उल्लेखनीय सार्वजनिक गतिशीलता की आवश्यकता होगी।
    - विधायी निकायों को उनकी विधि निर्माण प्रक्रिया में सुधार लाने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु न्यायपालिका अपने पास उपलब्ध समस्त साधनों का उपयोग कर सकती है और उन्हें ऐसा करना भी चाहिये।

निष्कर्ष

भारतीय न्यायपालिका ने प्रायः यह प्रदर्शित किया है कि अन्य संस्थानों में व्याप्त शिथिलता को संबोधित कर लोकतंत्र को समृद्ध करना संभव है। विधायी प्रक्रिया की समीक्षा के लिये एक त्वरित और व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाकर न्यायपालिका संसद में भरोसे की पुनर्बहाली में मदद कर सकती है और हमें उस औचित्य की संस्कृति की ओर आगे बढ़ा सकती है जिसकी परिकल्पना संविधान में की गई है।

अभ्यास प्रश्न: विधायी प्रक्रिया की समीक्षा के लिये एक त्वरित और व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाकर न्यायपालिका संसद में भरोसे की पुनर्बहाली में मदद कर सकती है। चर्चा कीजिये।